P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-4* ISSUE-5*January-2017
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

1857 ई0 का जन विद्रोह

सुरेन्द्र पाल सिंह
सहायक प्रोफेसर,
इतिहास विभाग,
एम0एम0 पी0 जी0 कॉलेज,
फतेहाबाद, हरियाणा

सारांश

भारतीय जनता ने अंग्रेजी शासन की स्थापना 1757 ई. के बाद प्रतिवर्ष देश के किसी–न–किसी भाग में अंग्रेजी शासन के विरूद्ध संघर्ष किया। इन विद्रोहों में आदिवासियों के विद्रोह, किसानों के विद्रोह तथा सैनिकों के विद्रोह शामिल हैं। प्रारम्भिक सौ वर्षों में हुए ये विद्रोह किसानों, जमींदारों और छोटे सरदारों के पारस्पारिक संबंध और निष्ठा पर आधारित थे। इनमें राष्ट्रीयता की आधुनिक अनुभूति, उपनिवेशवाद के स्वभाव व प्रकृति या नये सामाजिक सम्बन्धों के आधार पर बनने वाले समाज की आधुनिक समझ का अभाव था। लेकिन 1857 ई0 का विद्रोह जिसमें किसानों, कारीगरों और सैनिकों ने काफी संख्या में भाग लिया। 1857 ई0 के विद्रोह ने न केवल विभिन्न धर्मों और जातियों की जनता बल्कि विभिन्न सामाजिक स्तरों की जनता को एकत्र कर दिया'। अंग्रेज पिछले सौ वर्षों से लगातार भारतीयों का शोषण कर रहे थे तथा लोग उसका विरोध भी कर रहे थे। लेकिन 1857 ई0 में सैनिकों के विद्रोह से उठी चिंगारी की आग भारत के कई हिस्सों में जंगल की आग की तरह फैल गई। इसमें लगभग हर वर्ग, धर्म व जाति के लोगों ने मिलकर हिस्सा लिया। इसलिए इस विद्रोह की व्यापकता, संगठन और मंशा को देखते हुए इसे स्वतन्त्रता संग्राम कहना उचित होगा। यद्यपि उस विद्रोह से भारत को ब्रिटिश उपनिवेशवादियों से आजाद करवाने में सफलता नहीं मिली, परन्तु सत्ता ईस्ट इंडिया कम्पनी के हाथों से निकलकर ब्रिटिश शासक के हाथों में चली गई।

मुख्य शब्द : विद्रोह, उपनिवेशवाद, सामांत, मिशनरी, साम्राज्यवाद, अस्त्रागार, रेजिमेंट, रैयतवाड़ी

प्रस्तावना

पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने 'भारत की खोज' में लिखा है कि, 'यह केवल एक सैनिक विद्रोह ही नहीं था। वह भारत में शीघ्र ही फैल गया तथा इससे जन–विद्रोह और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का रूप धारण लिया'।

भारतीय इतिहास इस बात का साक्षी है तथा उस बात के कई प्रमाण देता है कि 1857 ई0 का विद्रोह भारतीय जनता द्वारा अंग्रेजों के विरूद्ध 'प्रथम स्वतंत्रता संग्राम' था। भारतीय जनता ने अंग्रेजी शासन की स्थापना 1757 ई. के बाद प्रतिवर्ष देश के किसी–न–किसी भाग में अंग्रेजी शासन के विरूद्ध संघर्ष किया। इन विद्रोहों में आदिवासियों के विद्रोह, किसानों के विद्रोह तथा सैनिकों के विद्रोह शामिल हैं। प्रारम्भिक सौ वर्षों में हुए ये विद्रोह किसानों, जमींदारों और छोटे सरदारों के पारस्पारिक संबंध और निष्ठा पर आधारित थे। इनमें राष्ट्रीयता की आधुनिक अनुभूति, उपनिवेशवाद के स्वभाव व प्रकृति या नये सामाजिक सम्बन्धों के आधार पर बनने वाले समाज की आधुनिक समझ का अभाव था। लेकिन 1857 ई0 का विद्रोह जिसमें किसानों, कारीगरों और सैनिकों ने काफी संख्या में भाग लिया। इस विद्रोह ने ब्रिटिश शासन को गम्भीर चुनौती थी तथा उसकी जड़ें हिला दी।

लेकिन ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने इसे केवल मात्र सैनिक विद्रोह कहकर इसकी महत्ता व गरिमा को कम करने की कोशिश की है। ब्रिटिश सरकार ने दमन और कठोर नीति से इस विद्रोह को दबा दिया। यद्यपि उस विद्रोह से भारत को ब्रिटिश उपनिवेशवादियों से आजाद करवाने में सफलता नहीं मिली, परन्तु सत्ता ईस्ट इंडिया कम्पनी के हाथों से निकलकर ब्रिटिश शासक के हाथ में चली गई। इस विद्रोह में हिन्दूओं और मुसलमानों की एकता, विद्रोहियों के व्याप्क संगठन व सैनिकों के जोश, हिम्मत और दृढ़ संकल्प ने यह सिद्ध कर दिया कि यह विद्रोह सैनिक विद्रोह ही नहीं बल्कि स्वतन्त्रता संग्राम था।

अध्ययन के उद्देश्य

इस शोधपत्र में 1857 ई0 में ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध भारतीयों द्वारा किए गए संगठित जन विद्रोह के कारणों, प्रसार, स्वरूप व असफलता के कारणों का अध्ययन किया गया है। इसमें ब्रिटिश सरकार की साम्राज्यवादी नीतियों के कारण भारतीयों में पनपे रोष के फलस्वरूप संगठित जन विद्रोह की विवेचना की गई है। इसमें इस विद्रोह के वास्तविक स्वरूप के अध्ययन का प्रयास भी किया गया है।

अंग्रेंजी साम्राज्य के विरूद्ध संघर्ष के कारण

19वीं सदी के पूर्वार्ध में भारतीय राजनीतिक ढांचा परिवर्तनमय था, किंतु अधिकांश भारतीय राज्य सामांताय प्रणाली पर गठित थे। विभिन्न राज्यों की पराजय के पश्चात भी सामान्य जनसाधारण सामंती नेतृत्व को प्रायः स्वीकार किए हुए था। अंग्रेजों द्वारा स्थापित नई व्यवस्था के विरूद्ध असंतोष व्यक्त करने का एकमात्र साधन सैनिक विद्रोह था। अंग्रेज साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने इन विद्रोहों को सामंती असंतोष की अभिव्यक्ति कहकर उनके महत्व को कम करने का प्रयास किया है। उन विद्रोहों के पीछे सामंती असंतोष तो होता ही था लेकिन किसी भी समाज में सामाजिक असंतोष की अभिव्यक्ति प्रचलित माध्यम से ही हो सकती थी। यह माध्यम सामंत और सेना ही थे।

ईसाई मिशनरियों और अंग्रेंजी तिरस्कार दृष्टिकोण से असंतोष

आर्थिक और राजीनीतिक शोषण से भी अधिक व्यापक असंतोष अंग्रेजी अधिकारियों द्वारा भारतीयों के प्रति तिरस्कारपूर्ण दृष्टिकोण तथा ईसाई मिशनरियों के पक्षपातपूर्ण समर्थन से उत्पन्न हुआ। अंग्रेज अपनी जातीय उच्चता में विश्वास रखते थे और प्रत्येक भारतीय को उसकी हीनता से अवगत कराना चाहते थे। राजा राममोहनराय, सर सैयद अहमद खां और अन्य सम्मानित भारतीय नेताओं को अपने जीवन में अंग्रेजों के तिरस्कारपूर्ण व्यवहार का अनुभव करना पड़ा। समाचार पत्रों में विभिन्न ऐसी घटनाओं का वर्णन होता रहता था जिनमें अंग्रेजों के भारतीयों पर घातक प्रहार करने पर भी न्यायालय द्वारा उन्हें निर्दोष घोषित कर दिया जाता था। इससे भी अधिक असंतोष अंग्रेज अधिकारियों द्वारा पादरियों (ईसाई मिशनरियों) के समर्थन से पैदा हुआ था।[1] 19वीं सदी के पूर्वाद्ध में ईसाई मिशनरियों की कार्यवाही से व्यापक असंतोष फैला हुआ था। सर सैयद ने अपनी पुस्तक 'असबाब बगावत–ए–हिन्द' (भारतीय विप्लव के कारण) में इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। मिशनरी स्कूलों में पढ़े भारतीय विद्यार्थियों द्वारा भारतीय धर्मों की खुली आलोचना से यह विश्वास बड़ी सरलता से फैलता गया कि मिशनरी स्कूल भारतवासियों को ईसाई बनाने के साधन मात्र थे। सर सैयद अहमद के अनुसार हर बड़ा–छोटा व्यक्ति यह विश्वास करता था कि सरकार वास्तव में हिंदू तथा मुसलमान जनता को ईसाई बनाना चाहती थी। अंग्रेज अधिकारियों ने इस व्याप्क संदेह को दूर करने का कोई प्रयत्न नहीं किया। भारतवासियों को अपने धर्म के संबंध में अंग्रेजी नीति के प्रति भारी संदेह था। यह संदेह ईसाई मिशनरियों की गतिविधियों का ही परिणाम था। इसी संदेह के वातावरण में चर्बी वाले कारतूस की घटना हुई जिससे विद्रोह भड़क उठा।

आर्थिक शोषण

18वीं सदी के उतरार्ध में कुटीर उद्योगों का विनाश आरंभ हो चुका था किंतु 19वीं सदी के आरंभ में भारत का आर्थिक शोषण स्पष्ट होने लगा था। मुक्त व्यापार, अंग्रेजी व्यापारियों के भारत आने और इंग्लैंड के निर्मित वस्त्रों को अधिकाधिक मात्रा में भारत में बेचने से यहां के कुटीर उद्योग प्रायः लुप्त ही हो गए। अंग्रेजी प्रशासन से निर्धनता बड़ी तेजी से बढ़ रही थी। अंग्रेजों ने प्रशासनिक अधिकार से लाभ उठाकर भारतीय व्यापार, वाणिज्य और कुटीर उद्योगों को अपने नियंत्रण में कर लिया। प्रतिवर्ष जितना अतिरिक्त निर्यात व्यापार (आयात से अधिक) होता था वह धन निष्कासन के समान था। अंग्रेजी राज्य के आर्थिक शोषण से पुराना जमींदार वर्ग भी समाप्त हो गया। स्थायी और रैयतवाड़ी प्रथा से कृषकों पर अत्यंत हानिकारक प्रभाव हुए।[2] अवध में ताल्लुकदारों के समस्त अधिकार 1856 ई0 के भूमि प्रबंध से समाप्त कर दिए गए।

अंग्रेंजी आर्थिक नीतियों से कृषक, शिल्पी, जमींदार, व्यापारी सभी वर्ग दुःखी थे, केवल वे लोग प्रसन्न थे जो अंग्रेजी नीतियों के फलस्वरूप समाज में नया स्थान प्राप्त करने के इच्छुक थे। सरकारी नौकरियों के इच्छुक अंग्रेजी पढे–लिखे नवयुवक अथवा बंगाल का जमींदार वर्ग या वकीलों को छोड़कर समाज के अन्य बहुसंख्यक वर्ग अंग्रेजी साम्राज्य की नीतियों से दुखी थे।

राजनीतिक तथा प्रशासकीय कारण

अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना से विभिन्न भारतीय नरेशों, राजवंशों का अंत किया गया। इसका प्रभाव केवल कुछ व्यक्तियों तक की सीमित नहीं था बल्कि उन पर आश्रित सामंतो, सैनिकों, शिल्पियों तथा अन्य वर्गों पर भी पड़ा था। डलहौजी की राज्य अपहरण नीति से यह संभावना भी उत्पन्न हो गई थी कि भारत के शेष राज्यों को भी किसी न किसी बहाने से अंग्रेजी साम्राज्य में मिला लिया जाएगा। अवध से अधिक अंग्रेजों का समर्थक तथा आज्ञाकारी राज्य अन्य कोई भी नहीं था। सतारा से पुराने अथवा नागपुर से अधिक प्रतिष्ठित राजघराने कम ही थे। जब इन राज्यों को ही अंग्रेजी साम्राज्य में मिला लिया गया तब शेष राज्यों का अस्तित्व कभी भी समाप्त किया जा सकता था। केवल अपदस्थ राज्यों में ही नहीं बल्कि शेष राज्यों में भी यह भय उत्पन्न हो गया कि बढ़ते हुए अंग्रेजी साम्राज्यवाद के सामने उनके हित सुरक्षित नहीं थे।

प्रशासन में अंग्रेजों ने प्रजातीय भेदभाव की नीति अपना रखी थी। कार्नवालिस ने भारतवासियों को उच्च पदों से वंचित करके उनके प्रति अविश्वास की मनोवृति को बढ़ावा दिया।[3] यद्यपि 1833 ई0 के चार्टर एक्ट में जाति अथवा रंग के आधार पर भेद की नीति को समाप्त करने की घोषणा की गई थी लेकिन यह घोषणा मात्र ही रह गई। राजा राममोहन राय के लड़के को उच्च पद देना चाहकर भी बोर्ड आफ कंट्रोल असमर्थ रहा। शिक्षित तथा सम्मानित भारतीयों के प्रति भी अंग्रेजों का दृष्टिकोण अहंकार भरा हुआ होता था। दीनबंधु मित्र द्वारा रचित

'नील दर्पण' में नीलाहों के दुर्व्यवहार का अच्छा चित्रण किया गया। विभिन्न तात्कालिक समाचारपत्रों में अंग्रेजों के अमानवीय व्यवहार का वर्णन होता था। प्रशासन में व्यक्तिगत संपर्क का पूर्ण अभाव था। अंग्रेज अधिकारी अपने आप को पूरी तरह से अलग–थलग रखते थे, इससे भी उनमें और भारतीयों के मध्य एक ऊँची दीवार खड़ी हो जाती थी।

सेना में असंतोष

भारत में अंग्रेजी सेना के दो भाग होते थे। एक भाग में अफसर तथा सैनिक दोनों ही अंग्रेज, दूसरे भाग में अंग्रेज अफसर तथा भारतीय सैनिक होते थे। बंगाल, बंबई और मद्रास प्रांतों की अलग अलग सेनाएं थी। बंगाल सेनाध्यक्ष कंपनी की समस्त सेना का अध्यक्ष माना जाता था। बंगाल सेना में अधिकांश सैनिक उत्तरी भारत (मुख्यतः आधुनिक उत्तर प्रदेश) से भर्ती होते थे। इस सेना में बंगाली सैनिक बहुत कम होते थे। हिंदू सैनिकों में अधिकांश ऊंची जातियों के ब्राह्मण, राजपूत और जाट होते थे। बंबई और मद्रास की सेनाओं में मोपला तथा तामिल और तेलगू क्षेत्र के सिपाही (जिन्हें तिलंगा कहते थे) होते थे।

भारतीय सिपाहियों के लिए उच्चस्थान प्राप्त करने के अवसर बहुत कम थे। सेना में इनका प्रवेश यूरोपीय अफसरों को रिश्वत दिए बिना कम होता था। उनका सामान्य वेतन सात या आठ रूपए मासिक होता था। इसमें उन्हें अपनी वर्दी तथा खाने का खर्च देना पड़ता था जिसे वे उधार लेकर देते थें वेतन के दिन उन्हें एक रुपया या डेढ़ रुपए से अधिक नहीं मिलता था। पदोन्नति वरिष्ठता के आधार पर होती थी और तब भी नौ रुपए मासिक से अधिक उन्हें नहीं मिलता था। अंग्रेजी सेनिकों को उनसे कई गुणा अधिक वेतन मिलता था। पूरी भारतीय सेना में अंग्रेजी सेनिकों की संख्या एक छटे भाग से भी कम थी। लेकिन सैनिक का खर्च आधे से अधिक अंग्रेजों पर ही किया जाता था। मामूली कार्यों पर भारतीय सैनिकों को ही लगाया जाता और लूट के समय अधिकांश माल अंग्रेजों में ही बांटा जाता था। सेना का गठन ही इस प्रकार से किया हुआ था कि इन दोनों भागों में बहुत मनमुटाव था। हिंदुस्तानी सैनिकों को शिकायत के पर्याप्त उदाहरण उपलब्ध रहते थे।

1806 ई0 से 1856 ई0 तक विभिन्न अवसरों पर भारतीय सैनिकों ने अंग्रेजों के इस दुर्व्यवहार के विरूद्ध विद्रोह किए। 1806 ई0 में वैलोर के स्थान पर मद्रास सेना में एक विशेष प्रकार की पगड़ी पहनने, दाढ़ी मुंडवाने तथा तिलक न लगाने के आदेशों के विरूद्ध विद्रोह हुआ। 1824 ई0 में बैरकपुर की छावनी में दोहरे भत्ते के बिना रंगून जाने के प्रश्न पर उपद्रव हुआ जिसमें सैंकड़ों सैनिक मारे गए। बंगाल सेना को भारत के बाहर लड़ने के लिए भेजना भी असंतोष पैदा करने में सहायक हुआ। भारत से बाहर जाने पर उनके जाति से बहिष्कृत होने की आशंका रहती थी। उस समय सेना का सामान्य जनता से दैनिक जीवन में संपर्क बना रहता था इसलिए ईसाई मिशनरियों की गतिविधियों के संबंध में जनता की प्रतिक्रिया का भी उन्हें पूरा ज्ञान था। सेना में अधिकारियों के प्रति अविश्वास पहले से ही व्याप्त था। ऐसे वातारण में चर्बी वाले कारतूस की घटना हुई। 1 जनवरी, 1857 ई0 को एन्फील्ड राइफल का प्रयोग अंगरेज सेना अधिकारियों द्वारा आरंभ किया गया। इस राईफल में चरबी लगे विशेष प्रकार के छर्रे वाले कारतूस प्रयोग किए जाते थे जिन्हें मुंह से काटकर राइफल में भरा जाता था। इस कारतूस में गाय और सूअर की चर्बी भरी जाती थी।[4] इन कारतूसों का प्रयोग आरंभ हो जाने के पश्चात दमदम अस्त्रागार में एक खलासी ने ब्राह्मण के लोटे से पानी पीने का आग्रह किया। ब्राह्मण को अपने जाति से पतित हो जाने का भय था। उसके मना करने पर खलासी ने उसे व्यंगय किया कि उसकी जाति नए कारतूसों के प्रयोग के पश्चात समाप्त हो जाएगी। इस घटना का अंग्रेज अधिकारियों ने वर्णन किया है।[5]

सिपाहियों के आपत्ति करने पर सेनाध्यक्ष एनसन ने मार्च, 1857 ई0 में गोलाबारी अभ्यास को कुछ समय के लिए स्थगित कर दिया लेकिन लार्ड कैनिंग ने अप्रैल में आदेश दिए कि गोलाबारी अभ्यास चलता रहे और जो सिपाही इस अभ्यास से मना करे उसे सैनिक रीति से डंड दिया जाए। कुछ अन्य स्थानों पर चर्बी की अपेक्षा उस कारतूस में लगे विशेष प्रकार के चमकीले कागज पर आपत्ति उठाई गई। इन आपत्तियों की ओर अंग्रेजी अधिकारियों का दृष्टिकोण अनुशासनिक होता था। वे भारतीय सैनिकों को निरसत्र करना ही पर्याप्त समझते थे। इस नीति से असंतोष कम होने के स्थान पर शीघ्रता से फैलता था।

1857 के विद्रोह के लिए उत्तरदायी तात्कालिक घटनाएं

जनवरी, 1857 ई0 से चर्बी वाले कारतूसों की खबर बंगाल सेना में फैलनी आरंभ हो गई। यह खबर दमदम के तोपखाने में काम करने वाले एक खलासी ने एक ब्राह्मण सिपाही को व्यंगात्मक रूप से दी थी।[6] इससे बैरकपुर (कलकत्ता से 15 मील दूर) में बंगाल सेना की टुकड़ी (34 एन0आई0) में सबसे अधिक अशांति फैली। इसी टुकड़ी की कुछ कंपनियां फरवरी में बरहामपुर (कलकत्ता से 120 मील दूर) पहुंची और 26 फरवरी, 1857 ई0 को बरहामपुर में 19 एन0आई0 के सिपाहियों ने चर्बी लगे कारतूसों का प्रयोग करने से मना कर दिया। सिपाहियों के बाद में आज्ञापालन पर भी कैनिंग ने उस पूरी टुकड़ी को भंग करने के आदेश दिए। इससे 34 एन0आई0 के सैनिकों में असंतोष बढ़ा और मंगल पांडे नामक सैनिक ने अकेले अनुशासन भंग करने का निश्चय किया। 29 मार्च, 1857 ई0 को उसने अपनी सेना के दो अंग्रेज अधिकारियों को घायल कर दिया। लेकिन उस समय अन्य सैनिकों ने उसका साथ नहीं दिया। तब भी अंग्रेजों ने 34 एन0आई0 को भंग कर दिया। इस प्रकार अप्रैल के आरंभ में इन दोनों सेनाओं के सिपाहियों ने अवध में अपने घर पहुंचकर चर्बी वाले कारतूस की बात फैलाई। इसी प्रकार की घटनाएं अंबाला में हुई थी। 2 मई को ऐसी ही एक घटना लखनऊ में 7वीं अवध रेजिमेंट के साथ हुई जिसने कारतूसों का प्रयोग करने से मना कर दिया। अवध के चीफ कमिश्नर हेनरी लारेंस ने अगले दिन इस रेजिमेंट को भंग कर दिया।[7]

इन घटनाओं में षड्यंत्र अथवा संगठन का अभाव दिखाई पड़ता है। लेकिन इसी समय उत्तरी भारत

में चपातियां एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजी गई। इन चपातियों के साथ किसी निश्चित सूचना का ज्ञान उपलब्ध नहीं है। कुछ लोग इसको अंग्रेजी सरकार द्वारा आरंभ किया हुआ मानते थे। दूसरे लोग इसे किसी आने वाली विपत्ति से बचने का उपाय समझते थे। चपातियों के वितरण के संबंध में अधिक से अधिक यह कहा गया है कि नाना (विद्रोह के एक नेता) के गुरु ने नाना को बताया था कि जितने क्षेत्र में ये चपातियां पहुंचाई जा सकेंगी वह उसके पक्ष में हो जाएगा।[8]

चर्बी लगे कारतूसों की खबर मेरठ भी शीघ्र ही पहुंच गई। अप्रैल, 1857 ई0 में तीसरी लाईट कैवेलरी के अधिकारी कारमाईकेल स्मिथ ने स्थिति को बिगाड़ने में बहुत सहायता की। वह अत्यंत अहंमन्य अधिकारी था। सेना में व्याप्क असंतोष का पता होते हुए भी उसने 24 अप्रैल को 3 एल0सी0 की पैरेड का आदेश दिया। 90 घुड़सवारों में से 85 ने नए कारतूसों को लेने से मना कर दिया। आज्ञा उल्लंघन के अपराध में 85 सवारों को कोर्ट मार्शल द्वारा 5 वर्ष का कारावास दे दिया गया और 9 मई को मेरठ छावनी के सैनिकों के समक्ष उन्हें अपमानित करके उन्हें सामान्य अपराधियों के कपड़े तथा बेड़ियां पहना दी गई। उन्होंने अन्य सैनिक साथियों को इस अपमान का बदला लेने के लिए चुनौती दी।

इस विद्रोह की पूर्व सूचना 9 मई को अंग्रेज अधिकारियों को थी। मेरठ में 3 एल0सी0 के कमांडर लेफिटनेंट गफ को यह सूचना दी गई कि विद्रोह पैदल सेना द्वारा आरंभ होगा और बाद में घुड़सवार (एल0सी0) टुकड़ी उसमें सम्मिलित हो जाएगी। विद्रोह ठीक उसी क्रम से हुआ जिसकी पूर्व सूचना गफ को दी गई थी। इसके अतिरिक्त दिल्ली और मेरठ में तार संबंध 4 बजे के पूर्व ही कट चुके थे। ये दोनों घटनाएं इस बात को स्पष्ट करती है कि 10 मई का विद्रोह किसी योजना का ही परिणाम था।[9] सैनिकों का तुरंत दिल्ली के लिए प्रस्थान भी इस बात को स्पष्ट करता है कि विद्रोह आरंभ होने के पूर्व योजना का कुछ प्रारूप तैयार हो चुका था। 10 मई, 1857 ई0 की घटनाएं आकस्मिक कम और सुनियोजित अधिक थी, इसलिए इस विद्रोह के समय से पूर्व आरंभ होने की बात भी सही प्रतीत नहीं होती। कारमाइकेल स्मिथ ने अपनी अयोग्यता तथा कायरता को छिपाने के लिए अपने कार्य को अत्यंत बुद्धिमानी का बताया था क्योंकि उसने विद्रोह को समय से पूर्व ही आरंभ करवा कर विद्रोह कुचलवाने में सहायता की थी। यदि विद्रोह दो–तीन सप्ताह पश्चात आरंभ होना था तब सैनिकों द्वारा 10 मई की योजना के तैयार करने का प्रश्न ही नहीं उठता था। 10 मई का उपद्रव 85 घुड़सवारों के छुड़वाने के लिए आरंभ नहीं हुआ था।

अंग्रेजों द्वारा विद्रोह कुचला जाना

आरंभ में अंग्रेज सैनिक अथवा असैनिक अधिकारी इस विद्रोह के स्वरूप की कल्पना भी नहीं कर सके। मेरठ में विद्रोह के बाद अंग्रेजी सेना दो दिन तक निष्क्रिय रही। मई, 1857 ई0 में कलकत्ता में जीवन सामान्य रहा। कैनिंग तथा सेनाध्यक्ष जार्ज एनसन दोनों ने ही विद्रोह को बहुत कम महत्व दिया। सेनाध्यक्ष एनसन को युद्ध का बहुत कम अनुभव था। जान लारेंसे द्वारा दिल्ली पर तुरंत आक्रमण का सुझाव मिलने पर भी एनसन ने इसे स्वीकार नहीं किया। लेकिन शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गई। इसके बाद ही दिल्ली पर आक्रमण की तैयारी की गई। दिल्ली के भारतीय सैनिकों में कुशल युद्ध संचालकों का अभाव था। उन्होंने अपना ध्यान अंग्रेजों को दिल्ली रिज (लंबा पहाड़ी टीला) से हटाने पर केंद्रित किया। वे पजांब से पहुंचने वाली सहायता को रोकने में असमर्थ रहे। इस बीच यद्यपि भारतीय सैनिकों की संख्या में वृद्धि होती रही फिर भी वे अपनी सैनिक शक्ति को अधिक नहीं बढ़ा सके। अंग्रेजों और विद्रोही सैनिकों ने अंग्रेजों को प्रशासक वर्ग का प्रतिनिधि समझकर मारा था। वे हत्याएं प्रतिशोध की पहली घड़ी में ही हुई थी तथा अधिकांश अवसरों पर ये हत्याएं नेताओं के आदेशों के अभाव में हुई। इसके विपरित अंग्रेजों द्वारा रक्तपात अधिकारियों की अनुमति से तथा निष्ठुर प्रतिशोध की भावना से किया गया। अंग्रेजों ने केवल सैनिकों का ही नहीं अपितु साधारण नागरिकों का भी रक्तपात किया। यह रक्तपात युद्ध अथवा संघर्ष के समय नहीं हुआ (जैसा विद्रोही सैनिकों ने किया था) बल्कि भारतीय जनसंख्या को एक पाठ पढ़ाने के लिए विद्रोह समाप्ति के पश्चात किया गया।[10]

दिल्ली विजय में पंजाब के सिक्ख तथा अन्य सैनिकों का योगदान अधिक था। ऐसा कहा जाता है कि अंग्रेजों ने गुरू तेगबहादुर की सिक्खों द्वारा दिल्ली के मुगल सम्राट से प्रतिशोध लेने की भविष्यवाणी की अफवाह फैलाई थी।[11] दिल्ली की लूट और विनाश की कल्पना संभवतः इस बात से हो सकती है कि नादिरशाह की लूट और कत्लेआम उसके सामने फीकी है। 21 सितंबर से नवंबर के अंत तक यह कार्यक्रम चलता रहा । अंग्रेज सिपाहियों ने प्रत्येक भारतीयों को जो समाने आया मारना आरंभ किया, बाद में वे अन्य भारतीय सैनिकों के साथ लूट में सम्मिलित हो गए। लूट का अनुमान शायद इस बात से हो सके कि चार्ल्स ग्रिफिथस दिल्ली की जीत के समय एक अंग्रेज अधिकारी था। उसने दिल्ली के घेरे का वर्णन करते हुए लिखा है कि अंग्रेज अधिकारियों को दो लाख की लूट की सामान्य छूट थी। बाद में ग्रफिथस के अधीन अंग्रेज सिपाहियों के हीरे–जवाहरात बिक्री के लिए प्रदर्शन मंजूषा में रखे रहते थे।[12] मिर्जा गालिब और जहीर देहलवी, नजीर अहमद आदि के लेखों में इस बात के पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हैं।

जुलाई, 1857 ई0 में कानपुर पर अंग्रेजों का अधिकार हो चुका था यद्यपि तांतिया टोपे और विद्रोहियों से अंग्रेजों की कई बार मुठभेड़ हुई। लखनऊ और पूर्वी अवध में व्यापक अशांति तथा अव्यवस्था फैल गई इसलिए अंग्रेजों ने नेपाल के प्रधानमंत्री के सहायता के प्रस्ताव को स्वीकार किया। मार्च, 1858 ई0 तक अंग्रेजों का लखनऊ पर अधिकार हो गया। अंग्रेजों को रूहेलखंड, बुंदेलखंड और मध्य भारत में अपना नियंत्रण स्थापित करने में विभिन्न कठिनाईयों का सामना करना पड़ा, लेकिन जून 1858 ई0 तक अधिकांक्ष क्षेत्रों पर अंग्रेज सफल हो चुके थे। ईलाहाबाद और बनारस के क्षेत्रों में जून, 1858 ई0 में मार्शल ला स्थापित कर दिया गया और बिना मुकदमा चलाए लोगों को मृत्युदंड दिया जाने लगा।

1857 के विप्लव का स्वरूप

समकालीन अंग्रेज लेखकों और प्रशासकों से लेकर आज तक यह विवाद का विषय बना हुआ है कि 1857ई0 के विप्लव का स्वरूप क्या था। 1857–58 ई0 में भी कुछ अंग्रेज लेखकों की यह मान्यता थी कि यह विप्लव जन साधारण द्वारा असंतोष अभिव्यक्ति का एक उदाहरण था किंतु अधिकांश अंग्रेज लेखक इसे एक सैनिक विद्रोह मात्र ही मानते थे। ईसाई मिशनरी तथा इवेंजेलिकल विचारधारा से प्रभावित लेखक इस विद्रोह को ईश्वर द्वारा भेजी गई विपत्ति समझते थे क्योंकि कंपनी प्रशासन ने भारतीय प्रजा को ईसाई नहीं बनाया। इस विचार के विपरित पहली बार 1909 ई0 में विनायक दामोदर सावरकार ने 1857 ई0 के विप्लव को 'भारत की स्वतंत्रता का युद्ध' कहा और इस शीर्षक से एक ग्रंथ भी लिखा। यह ग्रंथ भारत में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों को प्रेरणा देने में कुछ सीमा तक सहायक हुआ।

1957 ई0 में स्वतंत्र भारत ने 1857 ई0 की क्रांति की पहली शताब्दी मनाई। इस अवसर पर सरकार की ओर से तथा अन्य शोधकर्ताओं और लेखकों ने इस विद्रोह पर पुनः विचारविमर्श किया। सुरेंद्रनाथ सेन ने अपनी पुस्तक '1857' में वाद–विवाद से बचने का पूरा प्रयत्न किया है। न केवल शीर्षक ही इस बात का द्योतक है बल्कि विभिन्न स्थानों पर वह विभिन्न बातों का समर्थन करते हैं। आंदोलन एक सैनिक विद्रोह की भांति आरंभ हुआ लेकिन केवल सेना तक सीमित नहीं रहा। सेना ने भी पूरी तरह विद्रोह में भाग नहीं लिया।[13] साथ ही इस उपद्रव को केवल सैनिक उपद्रव कहना गलत होगा।[14] 1857 ई0 में विद्रोह अवश्यभावी नहीं था लेकिन साम्राज्य के संविधान में यह निहत था।[15] आर0सी0 मजूमदार ने 'दी सिपोए म्यूटनी ऐंड दि रिवोल्ट आफ 1857' में इस विप्लव को सैनिकों का एक विद्रोह बताया यद्यपि कुछ क्षेत्रों में जनसाधारण ने इसका समर्थन किया।[16] प्रो0 शशीभूषण चौधरी ने 'सिविल रिबेरियन इन दि इंडियन म्यूटनी' लिखी। इसमें उन्होंने 1857 ई0 के विप्लव को सामान्य जनता का विद्रोह बताया।[17] यह विप्लव केवल एक सामंतीय विद्रोह नहीं था। जमींदारों और ताल्लुकेदारों ने केवल सामंतीय पद्धति के आधार पर संघर्ष में भाग नहीं लिया। उनके समर्थक उनके अधीन रहने वाली कृषक प्रजा मात्र ही नहीं थी बल्कि उस क्षेत्र की समस्त जनता उनका समर्थन कर रही थी।

यह तथ्य तो अब सर्वमान्य है कि 1857 ई0 का विप्लव केवल एक सैनिक विद्रोह नहीं था लेकिन इससे अधिक वह क्या था, इस पर भारी मतभेद है। डा0 ताराचंद ने यह मत प्रतिपादित किया है कि यह विप्लव मध्ययुगीन विशिष्ट किंतु अशक्त वर्गों का अपनी खोई हुई सत्ता को प्राप्त करने का अंतिम प्रयास था। ये वर्ग अंग्रेजी नियंत्रण से मुक्ति चाहते थे क्योंकि अंग्रेजी प्रशासकीय नीतियों से उन विशिष्ट वर्गों के हितों को हानि पहुंचती थी।[18] पूरनचंद जोशी इसे राष्ट्रीय और सामान्य जनता तक फैला हुआ विप्लव मानते हैं।[19] बैंजेमिन डिज़रैली ने इंग्लैंड की संसद में इस विद्रोह को एक राष्ट्रीय विद्रोह कहा था। डॉ0 के0 एल0 श्रीवास्तव के अनुसार 1857 ई0 के विप्लव में कृषकों के संघर्ष सामाजिक संघर्ष और स्वतंत्रता संग्राम के तत्व मिले हुए थे।[20] पामर इस विवाद को तय करने के लिए यह प्रश्न उठाते हैं कि एक विद्रोह को कितना व्याप्क होना चाहिए कि वह सामान्य विप्लव कहा जा सके? उनके अनुसार केवल कुछ सैनिकों अथवा एक टुकड़ी के विद्रोह को ही सैनिक विद्रोह कहा जा सकता है। पूरी सेना के सामान्य विद्रोह को सैनिक विद्रोह नहीं कहा सकता। विशेषकर उस स्थिति में जब सैनिकों में और अवध तथा बिहार और उत्तर–पश्चिमी प्रांत के नागरिकों में था।[21] बंगाल सेना के सैनिकों में एकता केवल सैनिक अनुशासन पर ही आधारित नहीं थी बल्कि व्यवसाय, आर्थिक स्थिति और क्षेत्रीय आधार पर भी थी। विश्व में अन्य (फ्रांस और रूस) व्याप्क क्रांतियां भी एक जन समुदाय द्वारा ही आरंभ हुई हैं। इन सब उदाहरणों में सम्मिलित असंतोष के साथ साथ सत्ताधारी वर्ग की नियत पर संदेह ने उस जन समुदाय को संघर्ष के लिए प्रेरित किया है।

डॉ0 मजूमदार ने विद्रोह के स्वरूप निर्धारण में बहादुरशाह, लक्ष्मीबाई, नानासाहब , कुंवर सिंह आदि नेताओं के व्यक्तिगत स्वार्थों को अधिक निर्णायक बताया है।[22] यदि यह मान लिया जाए कि 1857 ई0 की घटनाएं इन नेताओं के प्रयत्नों द्वारा आरंभ हुई तक उन नेताओं के उद्देश्यों को 1857 ई0 के स्वरूप के लिए निर्धारक मानना चाहिए। यदि इन नेताओं ने अनिच्छा और विवशता से 1857 ई0 की क्रांति में भाग लिया हो जैसा वास्तव में था और यदि क्रांति उन नेताओं के विद्रोह के पूर्व ही आरंभ हो गई हो तब केवल इन चार प्रमुख नेताओं के स्वार्थों को इस क्रांति के कारण अथवा स्वरूप निर्धारण में प्रमुख नहीं माना जा सकता।

1857 ई0 के विद्रोह का मूल्यांकन करते समय हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि विद्रोह में भाग लेने वाले नेताओं का अंग्रेजों के प्रति क्या दृष्टिकोण था? निस्संदेह वे अंग्रेजों को 'काफिर' 'फिरंगी' कहते थे और उन्हें भारत से निकालना चाहते थे। विभिन्न घोषणाओं में अंग्रेज विरोधी भावनाएं स्पष्ट थीं। इस विद्रोह का लक्ष्य विभिन्न नेताओं के भाषणों के आधार पर ही निर्धारित किया जा सकता है और यह लक्ष्य अंग्रेजों को भारत से निकालना था। इससे बढ़कर स्वतंत्रता संघर्ष के लिए और कोई लक्ष्य नहीं हो सकता। डॉ. ताराचंद भी यह स्वीकार करते हैं कि विद्रोहियों को संगठित करने वाला एकमात्र तत्व विदेशी शासन को समाप्त करने की भावना थी।[23] इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ही संघर्ष हुआ और इसी की सुरक्षा के लिए संघर्ष 1857 ई0 के अंत तक चलता रहा। अंग्रेज विरोधी भावनाएं केवल अंग्रेजों के विरूद्ध ही व्यक्त नहीं की गई बल्कि अंग्रेज समर्थक भारतीय व्यापारी तथा अधिकारी वर्ग (विशेषकर बनिया वर्ग) के विरूद्ध भी थी। जमींदारों और कृषकों की आर्थिक कठिनाईयों का लाभ उठाकर बनियों ने अंग्रेजी न्यायालयों की सहायता से भूमि पर अधिकार कर लिया था इसलिए अवध और अन्य क्षेत्रों में कृषकों और पुराने जमीदारों ने बनियों और नए भूस्वामियों के विरूद्ध विद्रोह किया।

1857–58 ई0 के विप्लव की असफलता से यह स्पष्ट हो गया कि अंग्रेजों के विरूद्ध सैनिक विद्रोह व्यर्थ था किंतु भारतीय परंपरा में 1857 ई0 की क्रांति और

इसके प्रसिद्ध नेता अंग्रेजों के विरूद्ध स्वतंत्रता संघर्ष के प्रतीक बनकर रहे। यह संघर्ष भावी पीढ़ियों को भारत की स्वतंत्रता की ओर प्रेरित करता रहा। सामंतीय तत्वों का नेतृत्व अवश्य उपलब्ध रहा लेकिन उस समय सामंतीय भक्ति और निष्ठा ही देशभक्ति की पर्यायवाची थी।[24] किसी भी आंदोलन की लोकप्रियता का अनुमान लगाते समय हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि किसी भी विद्रोह में एक अल्पसंख्यक वर्ग ही दृढ़ संकल्प वाला होता है और किसी भी समय में किसी भी देश में एक क्रांति का शतप्रतिशत समर्थन नहीं होता।[25]

1857 की असफलता के कारण

1857 ई0 के विप्लव की असफलता पूर्व निश्चित थी। इस असफलता के लिए मुख्य कारण निम्नलिखित थेः

योग्य नेतृत्व का अभाव

विद्रोह के नेताओं में सैनिक कुशलता तथा संगठित होकर कार्य करने का अभाव था। नाना साहब, लक्ष्मीबाई, कुंवर सिंह, बहादुरशाह मिलकर कार्य नहीं कर सके। इनमें से किसी भी नेता में कुशल सैन्य संचालन के गुणों का अभाव था। यह तथ्य दिल्ली, कानपुर, झांसी, ग्वालियर के अभियानों से स्पष्ट हो जाता है। दिल्ली में अंग्रेजों को बाहर से सैनिक सहायता उपलब्ध हो जाने देना सैनिक अदूरदर्शिता का प्रतीक था। व्यक्तिगत साहस ही युद्ध में सफलता दिलाने के लिए पर्याप्त नहीं होता । विद्रोह आरंभ करने वाले सैनिक प्रशिक्षित अंग्रेजी सेना के अंग थे। अंग्रेजी सेना में वे सफलता से लड़े थे लेकिन अंग्रेजों के विरूद्ध उनकी सैनिक योग्यता का भली भांति प्रयोग नहीं किया जा सका। अंग्रेजी विजयी सेना में उनसे अधिक प्रशिक्षित सैनिक कम ही थे लेकिन भारतीय सैनिकों को सबसे बड़ी कमी कुशल नेतृत्व का अभाव थी।

साधनों की अपेक्षाकृत कमी

भारतीय सैनिकों तथा नेताओं के पास अंग्रेजी सेना तथा शासकों की तुलना में साधन बहुत कम थे। अंग्रेजी सरकार की सहायता के लिए अधिकांश भारतीय नरेश, पंजाब, बंगाल और मद्रास, बंबई प्रांतों का अधिकांश राजस्व उपलब्ध था। सैन्य सामग्री इंग्लैंड के उद्योगों से पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो सकती थी। भारतीय नेताओं के आर्थिक और सैनिक साधन बहुत सीमित थे यद्यपि उनके पास जनसंख्या अधिक थी। बहुत अवसरों पर भारतीय सैनिकों के पास सामान्य शस्त्र भी नहीं होते थे, अधिक विकसित शस्त्रों के समक्ष मानव शक्ति अधिक समय तक नहीं टिक सकती। इन नेताओं की आर्थिक कठिनाईयां भी सामान्य ही थी।

केंद्रीय संगठन का अभाव

यद्यपि विद्रोह के पूर्व कुछ संगठन अथवा योजना अवश्य रही थी लेकिन इस योजना का क्रमबद्ध रूप नहीं था न ही कोई केंद्रीय संस्था अथवा संगठन इसके संचालन के लिए उत्तरदायी था। सेनाओं के दिल्ली पहुंचने तक तो किसी योजना का रूप दिखाई पड़ता है लेकिन बाद में यह समाप्त सा दिखाई पड़ता है। इस योजना, संगठन अथवा नेतृत्व के अभाव को कुछ आलोचकों ने विद्रोह में राष्ट्रीयता के तत्व का अभाव मान लिया है लेकिन यह गलत है। विद्रोहियों के उत्साह अथवा प्रेरणा में कोई कमीं नहीं थी उनके लिए सामंतीय नेतृत्व ही पर्याप्त था। राष्ट्रीयता का उस समय कोई प्रश्न नहीं था। दुर्भाग्य की बात यह थी कि विभिन्न सामंती नेता आपस में सहमत नहीं हो सके। सैनिक अभियान की सफलता की दृष्टि से भले ही यह कहा जा सके कि एक एक क्षेत्र तक कार्य सीमित रखना सफलता में सहायक था किंतु कोई नेता ऐसा भी होना चाहिए था जो अग्रेजों की गतिविधियों को ध्यान में रखकर सब क्षेत्रों के कार्यों के संचालन को समन्वित कर सकता।

ठोस लक्ष्य का अभाव

अधिकांश विद्रोही नेताओं ने विद्रोह में अनिच्छा से भाग लिया था। बहादुरशाह, कुंवर सिंह, नाना साहब, रानी लक्ष्मीबाई आदि नेता परिस्थितियों के अनुसार अपने आपको ढ़ालते चले गए। इनमें से किसी ने भी इस विद्रोह की योजना नहीं बनाई थी। सैनिकों अथवा सामान्य जनता के विद्रोह आरंभ कर देने के पश्चात भी कुछ समय तक नेता अंग्रेजों से अपनी निजी लाभ और स्वार्थों की उचित व्यवस्था चाहते थे। निराशा मिलने पर ही उन्होंने विद्रोहियों का समर्थन किया। ऐसी स्थिति में इस विद्रोह के समक्ष साकार लक्ष्यों का अभाव था। इन नेताओं के निजी पत्रों और वक्तव्यों को देखकर ही यह सहज धारणा बन जाती है कि 1857 ई0 के विप्लव के पीछे उनकी कोई योजना नहीं थी। ऐसे व्याप्क आंदोलन अथवा विप्लव का आरंभ बिना योजना के संभव ही नहीं था। इसके संयोजक कौन लोग थे, इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया जा सकता क्योंकि विद्रोहियों और उनके समर्थकों का विनाश पूरी तरह किया गया। विद्रोह में भाग लेने वालों का दृष्टिकोण व्यक्तिनिष्ठा था। अंगरेजी शासन को समाप्त करने का भ्रांतिपूर्ण अर्थ उन्होंने अंगरेज अधिकारियों को समाप्त कर देना ही समझा। वे यह नहीं समझते थे कि कुछ अंग्रेजों को समाप्त कर देने से ही अंग्रेजी सत्ता समाप्त नहीं हो सकती थी। इस तथ्य को न समझ सकना भी उनकी असफलता के लिए उत्तरदायी रहा।

निष्कर्ष

निष्कर्ष के तौर पर कह सकते हैं कि ब्रिटिश शासन के खिलाफ यह एक संगठित विद्रोह था। हालांकि इसके पहले भी भारत में आदिवासियों, किसानों तथा सैनिकों ने ब्रिटिश साम्राज्य के विरूद्ध विद्रोह किए थे लेकिन उनकी प्रकृति क्षेत्रीय थी। इस विद्रोह के बारे में कई विद्वानों के अलग–अलग मत हैं। जैसे मेलेसल के अनुसार, 'यह अंग्रेजों को भारत से निकालने का षडयन्त्र था। कूपलैण्ड तथा स्कॉट के अनुसार, ' यह मुसलमानों का विद्रोह मात्र था। जीजे0 मीडले के अनुसार,' यह विद्रोह गोरी और काली जातियों के बीच एक संघर्ष मात्र था'। हालांकि इस विद्रोह में भाग लेने वालों ने अपने हितों को ध्यान में रखा लेकिन सभी विद्रोहियों का मकसद अंग्रेजों को भारत से बाहर निकालना था। जिसके लिए सभी विद्रोही आपसी मतभेद भूलाकर ब्रिटिश सामाज्य के विरूद्ध खड़े हो गए। वी0डी0 सावरकर तथा अशोक मेहता ने इसे, 'संगठित राष्ट्रीय आंदोलन' की संज्ञा दी थी और कहा कि इसका सिद्धान्त सर्वधर्म एवं स्वराज्य था'। कॉर्ल मार्क्स ने भी 1857 ई0 के विद्रोह की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि 'ब्रिटिश अधिकारियों ने देशी फौज का गठन करके साथ ही साथ प्रतिरोध का प्रथम

आम केन्द्र भी संगठित कर लिया है, जिससे अभी तक भारतीय जनता वंचित थी। 1857 ई0 के विद्रोह ने न केवल विभिन्न धर्मों और जातियों की जनता बल्कि विभिन्न सामाजिक स्तरों की जनता को एकत्र कर दिया'। अंग्रेज पिछले सौ वर्षों से लगातार भारतीयों का शोषण कर रहे थे तथा लोग उसका विरोध भी कर रहे थे। लेकिन 1857 ई0 में सैनिकों के विद्रोह से उठी चिंगारी की आग भारत के कई हिस्सों में जंगल की आग की तरह फैल गई। इसमें लगभग हर वर्ग, धर्म व जाति के लोगों ने मिलकर हिस्सा लिया। इसलिए इस विद्रोह की व्यापकता, संगठन और मंशा को देखते हुए इसे स्वतन्त्रता संग्राम कहना उचित होगा। यद्यपि उस विद्रोह से भारत को ब्रिटिश उपनिवेशवादियों से आजाद करवाने में सफलता नहीं मिली, परन्तु सत्ता ईस्ट इंडिया कम्पनी के हाथों से निकलकर ब्रिटिश शासक के हाथों में चली गई।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *मन्मथ नाथ गुप्त, राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास, पृ0 76*
2. *वही, पृ0 71*
3. *ताराचन्द, भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास –भाग II पृ0 124*
4. *जे0 ए0 वी0 पामर, दि म्यूटनी आउटब्रेक एट मेरठ, पृ0 11,14*
5. *वही, पृ0 15*
6. *आर0एल0 शुक्ल (सं0), आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0 112*
7. *विपिन चन्द्रा, फ्रीडम स्टर्गल, पृ0 44*
8. *मन्मथ नाथ गुप्त, वही, पृ0 76*
9. *ईश्वरी प्रसाद,आधुनिक इतिहास (प्रथम सं0), पृ0 245*
10. *के0एल0 टुटेजा, जलियांवाला बागः ए क्रिटीकल जंकचर इन दि इण्डियन नेशनल मूवमैन्ट, सोशल सांईटिस्ट, पृ0 48*
11. *विश्वमित्र उपाध्याय, विदेशों में भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलन (प्रथम भाग) पृ0 13, फौजा सिंह , दि कूकाज, पृ0 176*
12. *सुरेन्द्रनाथ सैन, 1857, पृ0 115*
13. *वही पृ0 405*
14. *वही पृ0 411*
15. *वही पृ0 417*
16. *आर0 सी0 मजूमदार, पृ0 218*
17. *शशी भूषण चौधरी, पृ0 284, 285*
18. *ताराचन्द, वही पृ0 43,45*
19. *पूरनचन्द जोशी, 1857, पृ0 124*
20. *के0एल0 श्रीवास्तव, रिवोल्ट आफ 1857, पृ0 243*
21. *जे0 ए0 बी0 पामर, वही, पृ0 134*
22. *आर0 सी0 मजूमदार, पैरामांउटसी, पृ0 622*
23. *ताराचन्द, वही, पृ0 106, 107*
24. *सुरेन्द्रनाथ सेन, वही, पृ0 412*
25. *वही, पृ0 411*